

दुराचारंस्त्वया स्वस्य कथ्यते गर्हणोत्करैः। तदा ते पतति व्यक्तं मस्तकाच्छत्रिका द्रुतम् ॥७॥
 तथा तथा कृते शीघ्रं छत्रिका पतिता क्षितौ। सा लोके च विशुद्धाभूद्-ब्राह्मणी निजगर्हणात् ॥८॥
 तथान्यैस्तु बुधैः कार्यं गर्हणं स्वस्य शुद्ध्ये। गुरुणामग्रतो भक्त्या दोषके पापभीरुभिः ॥९॥
 शल्येनैव यथा प्रपीडिततनुर्निष्काश्य शल्यं भटः संप्राप्नोति सुखं तथा च सुधियः श्रीजैनसूत्रान्वितान्।
 श्रित्वा श्रीमुनिनायकाञ्छुभतरान्भूत्वा च शल्योज्झिताः स्वात्मोत्पन्नकुदोषगर्हणभरैर्नित्यं भजन्तु श्रियम् ॥१०॥
इति कथाकोशे आत्मगर्हणाख्यानं समाप्तम्।

८६. सोमशर्ममुनेराख्यानम्

सम्प्रणम्य जिनाधीशं सारधर्मोपदेशकम्।
 सोमशर्ममुनेर्वचि शर्मदं सुकथानकम् ॥१॥
 आलोचनैर्गर्हणनिन्दनैश्च व्रतोपवासैः स्तुतिसत्कथाभिः।
 एभिस्तु योगैः क्षपणं करोमि विषप्रतीघातमिवाप्रमत्तः ॥२॥

अथात्र भरते क्षेत्रे पुण्ड्राख्यविषये शुभे। देवीकोटपुरे जातो ब्राह्मणः सोमशर्मवाक् ॥३॥
 वेदवेदाङ्गपारङ्गः सोमिल्याब्राह्मणीपतिः। संजातौ चाग्निभूत्याख्यवायुभूती तयोः सुतौ ॥४॥

शुद्ध हुई। इसी तरह अन्य भव्यजनों को भी उचित है कि वे प्रतिदिन होने वाले बुरे कर्मों की गुरुओं के पास आलोचना किया करें। उससे उनका पाप नष्ट होगा और अपने आत्मा को वे शुद्ध बना सकेंगे। किसी पुरुष के शरीर में काँटा लग गया और वह उससे बहुत कष्ट पा रहा है। पर जब तक वह काँटा उसके शरीर से नहीं निकलेगा तब तक वह सुखी नहीं हो सकता। इसलिए उस काँटे को निकाल फेंककर जैसे वह पुरुष सुखी होता है, उसी तरह जो आत्म-हितैषी जैनधर्म के बताये सिद्धान्त पर चलने वाले वीतरागी साधुओं की शरण ले अपने आत्मा को कष्ट पहुँचाने वाले पापकर्म रूपी काँटे की कृत कर्मों की आलोचना द्वारा निकाल फेंकते हैं वे फिर कभी नाश न होने वाली आत्मीक लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं ॥२-१०॥

८६. सोमशर्म मुनि की कथा

सर्वोत्तम धर्म का उपदेश करने वाले जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर सोमशर्म मुनि की कथा लिखी जाती है ॥१॥

आलोचना, गर्हा, आत्मनिन्दा, व्रत उपवास, स्तुति और कथाएँ तथा इनके द्वारा प्रमाद को, असावधानी को नाश करना चाहिए। जैसे मंत्र, औषधि आदि से विष का वेग नाश किया जाता है। इसी सम्बन्ध की यह कथा है ॥२॥

भारत के किसी हिस्से में बसे हुए पुण्ड्रक देश के प्रधान शहर देवी-कोटपुर में सोमशर्म नाम का ब्राह्मण हो चुका है। सोमशर्म वेद और वेदांग, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, शिक्षा और कला का अच्छा विद्वान् था। इसकी स्त्री का नाम सोमिल्या था। इसके अग्निभूति और वायुभूति दो लड़के थे ॥३-४॥

तत्रैव नगरे विष्णुदत्तनामा द्विजोपरः। विष्णुश्रीकामिनीनाथो भूरिवित्तसमन्वितः ॥५॥
 ऋणं श्रीविष्णुदत्तात् तु गृहीत्वा सोमशर्मकः। एकदा धर्ममाकर्ण्य मुनेः पाश्वे जिनेशिनाम् ॥६॥
 दीक्षामादाय सद्भक्त्या मुनिर्भूत्वा विचक्षणः। कृत्वा विहारमत्युच्चैः प्राप्तः कोटपुरं पुनः ॥७॥
 दृष्ट्वासौ विष्णुदत्तेन धृत्वा द्रव्यं प्रयाचितः। सोमशर्ममुनेः पुत्रौ निर्धनौ तौ तु साम्प्रतम् ॥८॥
 द्रव्यं मे देहि भो धीर नो चेद्धर्मं सुशर्मदम्। तच्छ्रुत्वा वक्ति स्वाचार्यं विकल्पं ॥९॥
 वीरभद्रमहाचार्यवाक्यतस्तु श्मशानके। धर्मं विक्रीणयन्तं च प्रत्यक्षीभूय देवता ॥१०॥
 संजगाद मुने स्वामिन्धर्मस्ते कीदृशो भुवि। ततः प्राह मुनिः सोपि सोमशर्मा गुणोज्ज्वलः ॥११॥
 मूलोत्तरैर्गुणैर्युक्तो दशलाक्षणिको महान्। धर्मो देवि मम श्रीमज्जिनेन्द्रैर्भीषितः शुभः ॥१२॥
 तत्समाकर्ण्य सा देवी सन्तुष्टा भक्तिभारतः। नत्वा मुनिं जगद्वन्द्यं संजगौ व्यक्तभाषया ॥१३॥
 धम्मो जयवसियरणं धम्मो चिन्तामणी अणघेओ। धम्मो सुहवसुधारा धम्मो कामदुहा धेणू ॥
 किं जंपिण्ण बहुणा जं जं दीसइ सम्मतियलोए। इंदियमणोहिरामं तं तं धम्मफलं सव्वं ॥
 सर्वलोकोत्तमस्यास्य नास्ति मूल्यं सुधर्मणः। किं तु सर्वोपसर्गस्य विनाशार्थं महामुनेः ॥१४॥

यहाँ विष्णुदत्त नाम का एक और ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम विष्णुश्री था। विष्णुदत्त अच्छा धनी था। पर स्वभाव का अच्छा आदमी न था। किसी दिन कोई खास जरूरत पड़ने पर सोमशर्म ने विष्णुदत्त से कुछ रुपया कर्ज लिया था। उसका कर्ज अदा न कर पाया था कि एक दिन सोमशर्म के किसी जैनमुनि के धर्मोपदेश से वैराग्य हो जाने से मुनि हो गया। वहाँ से विहार कर वह कहीं अन्यत्र चला गया और दूसरे नगरों और गाँवों में धर्म का उपदेश करता हुआ एक बार फिर वह कोटपुर में आया। विष्णुदत्त ने तब उसे देखकर पकड़ लिया और कहा—साधुजी, आपके दोनों लड़के तो इस समय महा दरिद्र दशा में हैं। उनके पास एक फूटी कौड़ी तक नहीं हैं वे मेरा रुपया नहीं दे सकते। इसलिए या तो आप मेरा रुपया दे दीजिये या अपना धर्म बेच दीजिये। सोमशर्म मुनि के सामने बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई, वे क्या करें, इसकी उन्हें कुछ सूझ न पड़ी। तब उनके गुरु वीरभद्राचार्य ने उनसे कहा—अच्छा तुम जाओ और धर्म बेचो! उनकी आज्ञा पाकर सोमशर्म मुनि मसान में जाकर धर्म बेचने लगे। इस समय एक देवी ने आकर उनसे पूछा—मुनिराज, जिस धर्म को आप बेच रहे हैं, भला कहिए तो वह कैसा है? उत्तर में मुनि ने कहा—मेरा धर्म अट्ठाईस मूलगुण और चौरासी लाख उत्तरगुणों से युक्त है तथा उत्तम—क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग आकिंचन और ब्रह्मचर्य इन दस भेद रूप है। धर्म का यह स्वरूप श्री जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है। मुनि द्वारा अपने बेचे जाने वाले धर्म की इस प्रकार व्याख्या सुनकर वह देवी बहुत प्रसन्न हुई उसने मुनि को नमस्कार कर धर्म की प्रशंसा में कहा—मुनिराज, आपने जो कहा वह बहुत ठीक है। यही धर्म संसार को वश करने के लिए एक वशीकरण मंत्र है, अमूल्य चिन्तामणि है, सुखरूप अमृत की धारा है और मनचाही वस्तुओं के दुहने—देने के लिए कामधेनु हैं। अधिक क्या किन्तु यह समझना चाहिए कि संसार में जो—

एकवारं त्रिमुष्ट्या च समुत्पाटितकेशजम्। मूल्यलेशं ददामीमं श्रीमतां शर्मकारिणाम् ॥१५॥
 इत्युक्त्वासौ लसत्कान्तिप्रद्योतितककुब्मुखम्। रत्नराशिं विधायोच्चैर्देवता स्वगृहं गता ॥१६॥
 श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्मप्रभावः केन वर्ण्यते। यो धर्मः शर्मदो नित्यं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितः ॥१७॥
 प्रभाते तत्तपोलक्ष्मी-सत्प्रभावप्रवीक्षणात्। विष्णुदत्तो द्विजश्चापि नत्वा तं मुनिनायकम् ॥१८॥
 संजगाद मुने धीर धन्यस्त्वं जैनतत्त्ववित्। दुर्धरोरुतपोयुक्तो विरक्तो मोहकर्मणि ॥१९॥
 अहं दुष्कर्मयोगेन वंचितो धनतस्करैः। अतः परं भवत्पादपद्मयुग्माश्रयं भजे ॥२०॥
 इत्यादिकैः शुभैर्वाक्यैः स्तुत्वा तं भक्तिनिर्भरः। पादमूले मुनेस्तस्य दीक्षामादाय निर्मदः ॥२१॥
 मुनिर्भूत्वा गुरोर्भक्त्या स्वर्मोक्षसुखभागभूत्। अहो धर्माश्रितो जन्तुः को वा न स्यान्महासुखी ॥२२॥
 सर्वभव्यजनाश्चान्ये धर्मे श्रीमज्जिनेशिनम्। तं प्रभावं समालोक्य संजाता भक्तिनिर्भराः ॥२३॥
 तद्धनैः श्रावकैश्चापि कोटितीर्थाभिधानकः। चैत्यालयो जिनेन्द्राणां कारितः शर्मदायकः ॥२४॥

जो मनोहरता देख पड़ती है वह सब एक धर्महीन का फल है। धर्म एक सर्वोत्तम अमोल वस्तु है। उसका मोल हो ही नहीं सकता। पर मुनिराज, आपको उस ब्राह्मण का कर्ज चुकाना है। आपका यह उपसर्ग दूर हो, इसलिए दीक्षा समय-केशलोंच किए आपके बालों को उस कर्ज के बदले दिये देती हूँ। यह कहकर देवी उन बालों को अपनी दैवी-माया से चमकते हुए बहुमूल्य रत्न बनाकर आप अपने स्थान पर चल दी। सच है, जैनधर्म का प्रभाव कौन वर्णन कर सकता है, जो कि सदा ही सुख देने वाला और देवों द्वारा पूजा किया जाता है ॥५-१७॥

सबेरा होने पर विष्णुदत्त, सोमशर्म मुनि के तप का प्रभाव देखकर चकित रह गया। उसकी मुनि पर तब बड़ी श्रद्धा हो गई उसने नमस्कार कर उनकी प्रशंसा में कहा-योगिराज, सचमुच आप बड़े ही भाग्यशाली हैं। आपके सरीखा विद्वान् और धीर मैंने किसी को नहीं देखा। यह आपही से महात्माओं का काम है जो मोहपाश को तोड़-तुड़ाकर इस प्रकार दुःसह तपस्या कर रहे हैं। महाराज, आपकी मैं किन शब्दों में तारीफ करूँ, यह मुझे नहीं जान पड़ता। आपने तो अपने जीवन को सफल बना लिया। पर हाय! मैं पापी पापकर्म के उदय से धनरूपी चोरों द्वारा ठगा गया। मैं अब इनके पैँचीले जाल से कैसे छूट सकूँगा? दयासागर! मुझे बचाइये। नाथ, अब तो मैं आप ही के चरणों की सेवा करूँगा। आपकी सेवा को ही अपना ध्येय बनाऊँगा। तब ही कहीं मेरा भला होगा। इस प्रकार बड़ी देर तक विष्णुदत्त ने सोमशर्म मुनि की स्तुति की। अन्त में प्रार्थना कर उनसे दीक्षा ले वह मुनि हो गया। जो विष्णुदत्त एक ही दिन पहले मुनि की इज्जत, प्रतिष्ठा बिगाड़ने को हाथ धोकर उनके पीछा पड़ा था और मुनि को उपसर्ग कर जिसने पाप बाँधा था वही गुरुभक्ति से स्वर्ग और मोक्ष के सुख का पात्र हो गया। सच है, धर्म की शरण ग्रहण कर सभी सुखी होती हैं। विष्णुदत्त के सिवा और भी बहुतेरे भव्यजन जैनधर्म का ऐसा प्रभाव देखकर जैनधर्म के प्रेमी हो गए और उस धन से, जिसे देवी ने मुनि के बालों को रत्नों के रूप में बनाया था, कोटितीर्थ नाम का एक बड़ा ही सुन्दर जिनमन्दिर बनवा दिया, जिसमें धर्मसाधन कर भव्यजन सुख-शान्ति लाभ-करते थे ॥१८-२४॥

श्रीमत्सारजिनेन्द्रदेवगदितं त्रैलोक्यसंपूजितं नाना शर्मविधायकं भवहरं स्वमोक्षदं सत्तपः।
आराध्यैव विशुद्धभक्तिभरतो ये साधवो धीधनाः प्राप्ता मुक्तिसुखं विनाशरहितं कुर्युस्तु ते मे श्रियम् ॥२५॥
इति कथाकोशे श्रीसोमशर्ममुनेराख्यानं समाप्तम्।

८७. कालाध्ययनाख्यानम्

यस्य ज्ञानं जगत्सारसंसाराम्भोधिपारदम्। तं प्रणम्य जिनं वक्ष्ये कालाध्ययनवृत्तकम् ॥१॥
वीरभद्रो जगद्भद्रो मुनीन्द्रो जैनतत्त्ववित्। एकदासौ महाटव्यां महोरात्रं पठेच्छ्रुतम् ॥२॥
श्रुतदेव्या तथा दृष्टस्ततः सम्बोधनाय च। धृत्वा गोकुलिकारूपं समागत्य निशि स्फुटम् ॥३॥
सुगन्धिमधुरं तक्रं गृहीस्वेति स्व लीलया। सा जल्पन्ती मुनेः पार्श्वे चक्रे पर्यटनं तदा ॥४॥
वीरभद्रो मुनिः प्राह शास्त्राभ्यासैकमानसः। मुग्धे किं गृहीलासीति तक्रं गृह्णाति कोधुना ॥५॥
निशायां निर्जने देशे तच्छ्रुत्वा देवतावदत्। त्वमेव गृहीलोऽकाले पठस्यत्रागमं यतः ॥६॥
ततोसौ मुनिरालोक्य नक्षत्राणि नभस्तले। प्रबुद्धो गुरुसान्निध्यं गत्वालोक्य निजक्रियाम् ॥७॥

जो बुद्धिरूपी धन के मालिक, बड़े विचारशील साधु-सन्त जिन भगवान् के द्वारा उपदेश किए, सारे संसार में पूजे-माने जाने वाले, स्वर्ग-मोक्ष के या और सब प्रकार सांसारिक सुख के कारण, संसार का भय मिटाने वाले ऐसे परम पवित्र तप को भक्ति से ग्रहण करते हैं वे कभी नाश न होने वाले मोक्ष सुख का लाभ करते हैं। ऐसे महात्मा योगीराज मुझे भी आत्मीक सच्चा सुख दें ॥२५॥

८७. कालाध्ययन की कथा

जिनका ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है और संसारसमुद्र से पार करने वाला है, उन जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर उचित काल में शास्त्राध्ययन कर जिसने फल प्राप्त किया उसकी कथा लिखी जाती है ॥१॥

जैनतत्त्व के विद्वान् वीरभद्र मुनि एक दिन सारी रात शास्त्राभ्यास करते रहे। उन्हें इस हालत में देखकर श्रुतदेवी एक अहीरनी का वेष लेकर उनके पास आई इसलिए कि मुनि को इस बात का ज्ञान हो जाए कि यह समय शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने का नहीं है। देवी अपने सिर पर छाछ की मटकी रखकर और यह कहती हुई, कि लो, मेरे पास बहुत ही मीठी छाछ है, मुनि के चारों ओर घूमने लगी। मुनि ने तब उसकी ओर देखकर कहा-अरी, तू बड़ी बेसमझ जान पड़ती है, कहीं पगली तो नहीं हो गई है बतला तो ऐसे एकान्त स्थान में ओर रात में कौन तेरी छाछ खरीदेगा? उत्तर में देवी ने कहा-महाराज क्षमा कीजिए। मैं तो पगली नहीं हूँ किन्तु मुझे आप ही पागल देख पड़ते हैं। नहीं तो ऐसे असमय में, जिसमें पठन-पाठन की मना है, आप क्यों शास्त्राभ्यास करते? देवी का उत्तर सुनकर मुनिजी की आँखें खुलीं। उन्होंने आकाश की ओर नजर उठाकर देखा तो उन्हें तारे चमकते हुए देख पड़े उन्हें मालूम हुआ कि अभी बहुत रात है। तब वे पढ़ना छोड़कर सो गए ॥२-७॥